

डी. वेंकटसुब्रमण्यम एवं अन्य

बनाम

एम.के. मोहन कृष्णमाचारी एवं एक अन्य

(2009 की आपराधिक अपील सं. 1766)

सितंबर 14, 2009

[आर.वी. रवींद्रन एवं बी. सुदर्शन रेड्डी, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 482 - अन्वेषण में हस्तक्षेप के लिए धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्ति - परिधि - अभिनिर्धारित: अपराध का अन्वेषण करना पुलिस का सांविधिक दायित्व और कर्तव्य है और न्यायालयों को सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और अन्वेषण एजेंसी को किसी विशेष तरीके से अन्वेषण करने का निर्देश नहीं देना चाहिए - न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को उत्पीड़न या पीड़न के हथियार में अवनत होने की अनुमति नहीं दी जा सकती - तथ्यों पर, उच्च न्यायालय ने, बिना कोई कारण अभिलिखित किए, पुलिस को निर्देश दिया कि साक्षियों के कथन अभिलिखित करना, गिरफ्तारी करना, संपत्ति जब्त करना और आरोप-पत्र दाखिल करना उनका दायित्व था - निर्देश उन संभावित परिणामों की किसी परवाह किए बिना आकस्मिक और यांत्रिक तरीके से जारी किए गए जो ऐसे निर्देशों से उत्पन्न हो सकते थे - उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग के परिणामस्वरूप अंततः अपीलकर्ताओं का उत्पीड़न हुआ - अपीलकर्ताओं को सुनवाई का अवसर भी नहीं दिया गया - अन्वेषण एजेंसी की

ओर से कर्तव्य-विमुखता का कोई आरोप नहीं था - आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य -
अन्वेषण - क्षेत्राधिकार।

18.9.2006 को आई.वी.आर. लिमिटेड ने उत्तरदाता के साथ एक समझौता ज्ञापन निष्पादित किया जिसमें उत्तरदाता ने आई.वी.आर. लिमिटेड के पक्ष में 28 लाख रुपये प्रति एकड़ के मूल्यवान प्रतिफल के लिए 600 एकड़ भूमि की बिक्री को सुगम बनाने पर सहमति व्यक्त की। यह सहमति हुई कि आई.वी.आर. लिमिटेड समझौता ज्ञापन के अंतर्गत उत्तरदाता के दायित्व के समय पर निपटान की सुरक्षा हेतु 2 लाख रुपये प्रति एकड़ धारित करेगी और यदि उत्तरदाता समझौता ज्ञापन की शर्तों का अनुपालन करने में विफल रहा, तो संचित प्रतिधारण राशि आई.वी.आर. द्वारा जब्त की जाएगी।

उत्तरदाता आई.वी.आर. के पक्ष में केवल 64 एकड़ भूमि के हस्तांतरण को सुगम बना सका। आई.वी.आर. ने 15.11.2006 को उत्तरदाता को अधिसूचना जारी की, किंतु कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। तत्पश्चात आई.वी.आर. ने भूमि के मालिकों के साथ सीधे दो समझौता ज्ञापन निष्पादित किए।

उत्तरदाता ने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अंतर्गत अपराधों के किए जाने का आरोप लगाते हुए प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज कराई। पुलिस ने मामला पंजीकृत किया और अन्वेषण प्रारंभ किया। उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत याचिका दाखिल की जिसमें पुलिस को 64 एकड़ भूमि के पंजीकरण को सुगम बनाने के लिए रु. 228 लाख जब्त करने का निर्देश देने की मांग की गई। उच्च न्यायालय ने याचिका दाखिल होने की तारीख से एक माह के भीतर, इसे अंतिम रूप से यह देखते हुए निपटा दिया कि पुलिस का यह दायित्व था कि वह साक्षियों के कथन अभिलिखित करने, गिरफ्तारी, संपत्ति जब्त करने, विभिन्न दस्तावेजों के अवलोकन, आरोप-पत्र

दाखिल करने सहित विधि के अनुसार अन्वेषण संचालित करे। न्यायालय ने तदनुसार पुलिस को छह माह के भीतर अन्वेषण शीघ्र पूर्ण करने का निर्देश दिया।

इस न्यायालय की अपीलों में, अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने अन्वेषण एजेंसी को किसी विशेष तरीके से कार्य करने का निर्देश जारी करके अपने अधिकार क्षेत्र क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है, जो असंधारणीय है।

अपीलें स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. अन्वेषण एजेंसी की ओर से कर्तव्य-विमुखता का कोई आरोप नहीं था। उत्तरदाता द्वारा दर्ज कराई गई सूचना पर तत्काल पंजीकृत मामले के अन्वेषण के मामले में अन्वेषण एजेंसी की ओर से किसी मिलीभगत और जानबूझकर विलंब का भी कोई आरोप नहीं था। याचिका लगभग धन की वसूली के असैनिक वाद जैसी लगती है। याचिका अपराध के पंजीकरण के एक सप्ताह के भीतर दाखिल की गई जिस समय तक पुलिस पहले ही गंभीर अन्वेषण प्रारंभ कर चुकी थी। अपीलकर्ताओं में से कोई भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दाखिल याचिका में पक्ष उत्तरदाता के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया था। केंद्रीय अपराध शाखा के उप निरीक्षक पुलिस द्वारा प्रतिनिधित्व राज्य को अकेले उत्तरदाता के रूप में पक्षकार बनाया गया था। अन्वेषण एजेंसी ने उच्च न्यायालय में दाखिल अपने प्रति-आवेदन में बताया कि आवश्यक कानूनी राय प्राप्त करने के पश्चात, एक मामला पंजीकृत किया गया और 'अन्वेषण प्रारंभ किया'। यह भी श्रेणीबद्ध रूप से कहा गया कि पुलिस ने "सभी संबंधित साक्षियों से पूछताछ की, उनके कथन अभिलिखित किए और भौतिक दस्तावेज भी एकत्र किए और सभी अभियुक्तों द्वारा संज्ञेय अपराधों के किए जाने की पुष्टि की।" [कंडिका 11] [454-एफ-एच; 455-ए-डी]

सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद एआईआर 1945 पीसी 18; पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एस.एन. बसाक (1963) 2 एस सी आर 52; बिहार राज्य एवं एक अन्य बनाम जे.ए.सी. सल्दाना एवं अन्य (1980) 2 एस सी आर 16; एम.सी. मेहता (ताज कॉरिडोर घोटाला) बनाम भारत संघ एवं अन्य (2007) 1 एससीसी 110, निर्भर किया गया।

2. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का संरक्षण एक स्वास्थ्यप्रद सार्वजनिक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए अभिकल्पित है जो यह है कि न्यायालयी कार्यवाही को उत्पीड़न या पीड़न के हथियार में अवनत होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग ही ऐसा था जिसके परिणामस्वरूप अंततः अपीलकर्ताओं का उत्पीड़न हुआ जैसा कि परवर्ती घटनाओं से स्पष्ट है। आक्षेपित आदेश के अनुसरण में, अन्वेषण प्राधिकरणों ने अपीलकर्ता सं.1 के पास पहुंचकर उसे अभिरक्षा में लिया और उसे टेलीविजन चैनल पर प्रदर्शित किया। पुलिस ने रु. 2.28 करोड़ की राशि का भुगतान करने की मांग की और धमकी दी कि यदि वह उनकी मांग का अनुपालन करने में विफल रहा तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाएगा। तदनुसार, अपीलकर्ताओं ने पुलिस थाने में ही रु. 10 लाख नकद भुगतान किया और रु. 2.18 करोड़ की राशि का चेक जारी किया। तथापि, इस न्यायालय के 4 मई, 2007 के अंतरिम आदेश के मद्देनजर बैंक को भुगतान रोकने के निर्देशों के कारण चेक नकद नहीं कराया जा सका। पुलिस ने यह स्पष्टीकरण दिया कि मामला पक्षकारों के बीच स्वैच्छिक रूप से निपट गया और इसलिए, अभियुक्तों को गिरफ्तार नहीं किया गया और अभिरक्षा में नहीं भेजा गया। इस विचार को स्वीकार करना कठिन है कि पुलिस थाने में पक्षकारों के बीच कोई समझौता हुआ था। यह समझना कठिन नहीं है कि किस प्रकार और किन परिस्थितियों में अपीलकर्ता राशि का भुगतान करने और चेक जारी करने पर सहमत हुए। यह ज्ञात नहीं है कि किस प्रकार और किस प्राधिकार के अंतर्गत पुलिस पक्षकारों के बीच किसी

विवाद में हस्तक्षेप कर उसे निपटा सकती थी। यह कहना निरर्थक है कि पुलिस के पास विवादों को निपटाने का ऐसा कोई प्राधिकार या कर्तव्य नहीं है। [कंडिका 15] [456-डी-एच; 457-ए-बी]

एम.सी. अब्राहम एवं एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2003) 2 एससीसी 649 निर्भर किया गया।

3. ऐसी कार्यवाहियों में न्यायालय का कर्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि एजेंसियां विधि के अनुपालन में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाहियों में हस्तक्षेप के लिए संरक्षित है यदि ऐसा हस्तक्षेप न्याय के सिरो को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो या जहां न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों का जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत ऐसी शक्ति उच्च न्यायालय को किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष लंबित मामले के संबंध में सदैव उपलब्ध है। [कंडिका 20] [459-जी-एच; 460-ए]

4. उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान तक नहीं दिया। जैसा कि आदेश में ही कहा गया है, यह अधिकतर उस बार के पार किए गए तर्कों से अधिक निर्देशित था कि पुलिस ने इस मामले में अपीलकर्ताओं से व्यक्तियों को गिरफ्तार करने और संलिप्त राशि को जब्त करने के लिए कोई कदम नहीं उठाए, यद्यपि याचिका में ऐसी कोई तथ्यात्मक नींव नहीं रखी गई थी। इसने पुलिस द्वारा दाखिल जवाबी हलफनामे को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया कि पुलिस अपराध के पंजीकरण के पश्चात थोड़े ही समय में दस साक्षियों की पहले ही परीक्षा कर चुकी थी और उनके कथन अभिलिखित कर चुकी थी। उच्च न्यायालय ने, बिना कोई कारण अभिलिखित किए, पुलिस को निर्देश दिया कि साक्षियों के कथन अभिलिखित करना, गिरफ्तारी करना, संपत्ति जब्त करना और आरोप-पत्र दाखिल करना उनका दायित्व था। यह समझना कठिन है कि उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482

के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में दूरगामी परिणामों वाले ऐसे निर्देश किस प्रकार जारी किए जा सकते थे। उच्च न्यायालय ने अपराध के अन्वेषण में हस्तक्षेप किया जो पुलिस के अनन्य क्षेत्र में है, लगभग पुलिस को किसी विशेष कोण से मामले का अन्वेषण करने और कुछ ऐसे कदम उठाने का निर्देश देकर जो पुलिस संग्रहीत साक्ष्य और अनेक अन्य परिस्थितियों के आधार पर अपने विवेक में हो सकता है उठाने का प्रयास करती या नहीं करती। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक अन्वेषण के परिणामस्वरूप गिरफ्तारी, संपत्ति की जब्ती और अंततः आरोप-पत्र का दाखिल होना हो। पुलिस, अपनी सांविधिक शक्ति और कर्तव्य के प्रयोग में, किसी मामले के अन्वेषण पर यह पा सकती है कि मामला बनता है जिसके लिए उसे आरोप-पत्र दाखिल करना है अथवा यह पा सकती है कि ऐसा कोई मामला नहीं बनता। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त क्षेत्राधिकार को मितव्ययिता से, सावधानीपूर्वक और सतर्कता के साथ केवल वहीं प्रयोग किया जाना चाहिए जहां ऐसा प्रयोग प्रावधान में ही निर्धारित परीक्षण द्वारा न्यायोचित हो। [कंडिका 21] [460-बी-जी]

5. मामले का एक अन्य पहलू यह भी है कि अपीलकर्ताओं को आपराधिक याचिका में पक्ष उत्तरदाता के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया जिसमें उनके विरुद्ध सारे आरोप लगाए गए हैं। पुलिस को गिरफ्तारी, संपत्ति जब्त करने और आरोप-पत्र दाखिल करने के उचित निर्देश जारी करने से पहले उच्च न्यायालय ने कभी यह उचित नहीं समझा कि अपीलकर्ताओं को सूचना दी जाए। [कंडिका 22] [460-एच; 461-ए-बी]

डिवाइन रिट्रीट सेंटर बनाम केरल राज्य एवं अन्य (2008) 3 एससीसी 542, निर्भर किया गया।

6. उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में, परिणामों का एहसास किए बिना, अपीलकर्ताओं को सुने बिना आकस्मिक और यांत्रिक तरीके से निर्देश जारी किए। आक्षेपित आदेश शून्य है और

केवल उसी आधार पर निरस्त किए जाने योग्य है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग (i) न्याय के सिरों को सुरक्षित करने के लिए; (ii) उच्च न्यायालय संहिता के अंतर्गत किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक ऐसे आदेश पारित कर सकता है; (iii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए - स्वतः संज्ञान लेकर या आवेदन पर किया जा सकता है। कोई अन्य आधार नहीं है जिस पर उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सके। उच्च न्यायालय ने क्यों और किन कारणों से मामले में उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता थी, इस बारे में कोई कारण अभिलिखित नहीं किया। उच्च न्यायालय से ऐसी टिप्पणियों की अपेक्षा नहीं है जो ऐसी टिप्पणियों से उत्पन्न होने वाले संभावित परिणामों की कोई परवाह किए बिना की जाएं। उच्च न्यायालयों से आने वाली टिप्पणियों का घटनाओं की गति और विधि की प्रक्रिया को प्रभावित करने का अपना प्रभाव हो सकता है। उस कारण से, मामलों का निपटारा करते समय और वह भी प्रभावित होने की संभावना वाले व्यक्तियों को सुने बिना, कोई भी अनावश्यक टिप्पणियां नहीं की जानी चाहिए। प्रस्तुत मामला स्वयं इस बात का एक आदर्श उदाहरण है कि ऐसी टिप्पणियां कैसे कठोर और दूरगामी परिणामों का कारण बन सकती हैं। [कंडिका 23 और 24] [461-ई-एफ; 462-ए-ई]

डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 1 एससीसी 416; इंदर मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य (2007) 12 एससीसी 1; केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम ए. रविशंकर प्रसाद एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 351, विशिष्ट।

वाद विधि संदर्भ:

(1963) 2 एस सी आर 52	निर्भर किया गया	कंडिका 4
(1980) 2 एस सी आर 16	निर्भर किया गया	कंडिका 5
(2007) 1 एससीसी 110	निर्भर किया गया	कंडिका 6
(2003) 2 एससीसी 649	निर्भर किया गया	कंडिका 16
(2008) 3 एससीसी 542	निर्भर किया गया	कंडिका 22
(1997) 1 एससीसी 416	विशिष्ट	कंडिका 25
(2007) 12 एससीसी 1	विशिष्ट	कंडिका 25
(2009) 6 एससीसी 351	विशिष्ट	कंडिका 25

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2009 की आपराधिक अपील सं. 1766।

मद्रास उच्च न्यायालय के 2007 के आपराधिक मूल याचिका सं. 6194 में दिनांक 5.4.2007 के निर्णय एवं आदेश से।

के साथ

2009 की आपराधिक अपील सं. 1767।

उदय यू. ललित, ए.टी.एम. रंगरामानुजम, एन.जी. गोविंदराजालू, अविशेक कुमार लाल, एस. महेंद्रन, पी.वी. योगेश्वरन, आर.एन. उपाध्या, के.वी. मोहन, एस. थनंजयन उपस्थित पक्षकारों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय दिया गया

बी. सुदर्शन रेड्डी, न्यायमूर्ति. 1. इन अपीलों में हमारे विचारार्थ जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी संज्ञेय अपराध में पुलिस द्वारा अन्वेषण की सांविधिक शक्ति में हस्तक्षेप करना उचित है? यदि ऐसी शक्ति न्यायालय के पास उपलब्ध है, तो उसके हस्तक्षेप के

मापदंड क्या हैं?

2. यह सुस्थापित है और इस न्यायालय ने बार-बार दोहराया है कि दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'संहिता') की योजना के अंतर्गत पुलिस प्राधिकरणों का किसी संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने का सांविधिक अधिकार और कर्तव्य है। इस न्यायालय ने एक से अधिक अवसरों पर पुलिस द्वारा उनके सांविधिक कार्यों के निर्वहन में अपराधों के अन्वेषण के क्षेत्र में न्यायालयों द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप की भर्त्सना की है। यह सिद्धांत *सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद*¹ में बहुत पहले ही सुस्पष्ट रूप से कहा जा चुका है और उसे बार-बार सम्मान और स्वीकृति के साथ उद्धृत किया गया है। प्रिवी काउंसिल ने देखा कि "जिस प्रकार यह आवश्यक है कि किसी अपराध का अभियुक्त प्रत्येक व्यक्ति को न्याय के न्यायालय तक मुक्त पहुंच मिले ताकि यदि वह जिस अपराध का आरोपी है उसका दोषी नहीं पाया जाता है तो उसे विधिवत बरी किया जा सके, उसी प्रकार यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप न करे जो उनके क्षेत्राधिकार में हैं और जिनमें विधि उन पर जांच का कर्तव्य अधिरोपित करती है।"

3. प्रिवी काउंसिल ने आगे देखा:

"भारत में जैसा कि दर्शाया गया है पुलिस को न्यायिक प्राधिकरणों से कोई प्राधिकार लिए बिना किसी कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों का अन्वेषण करने का सांविधिक अधिकार है, और उनके लॉर्डशिप के विचार में यह एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि यह अभिनिर्धारित संभव माना जाए कि न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग से उन सांविधिक अधिकारों में हस्तक्षेप किया जा सके। न्यायपालिका और पुलिस के कार्य पूरक हैं, अतिव्यापी नहीं, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विधि एवं व्यवस्था के उचित पालन के साथ संयोजन केवल प्रत्येक को अपने कार्य का प्रयोग करने के लिए

¹ ए.आई.आर 1945 पीसी 18.

छोड़ने से ही प्राप्त किया जा सकता है, निःसंदेह सदैव, न्यायालय के अधिकार के अधीन एक उचित मामले में हस्तक्षेप करने के लिए जब धारा 491, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति के निर्देश देने के लिए प्रस्तुत किया गया हो। तथापि ऐसे मामले में जैसा प्रस्तुत है, न्यायालय के कार्य तब प्रारंभ होते हैं जब उसके समक्ष कोई आरोप प्रस्तुत किया जाए और उससे पहले नहीं। कभी-कभी यह सोचा गया है कि धारा 561A ने न्यायालय को वर्धित शक्तियां दी हैं जो उसके पास उस धारा के अधिनियमित होने से पहले नहीं थीं। किंतु ऐसा नहीं है। धारा कोई नई शक्ति नहीं देती, यह केवल यह उपबंधित करती है कि जो शक्तियां न्यायालय के पास पहले से अंतर्निहित रूप से हैं वे संरक्षित रहेंगी और, जैसा कि उनके लॉर्डशिप सोचते हैं, इसे इसलिए सम्मिलित किया गया है कि कहीं यह न समझा जाए कि न्यायालय के पास केवल वे शक्तियां हैं जो दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदत्त हैं, और कि उस अधिनियम के पारित होने के बाद कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं बची।"

(जोर दिया गया)

4. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एस.एन. बसक² में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंड पीठ (खं.पी.) ने, ऊपर संदर्भित प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए, देखा:

"पुलिस के सांविधिक कर्तव्यों और शक्तियों तथा न्यायालय की शक्तियों पर रखी गई इस व्याख्या से हम सहमत हैं।"

और यह आगे अभिनिर्धारित किया गया:

"संज्ञेय अपराधों के अन्वेषण की शक्तियां संहिता के अध्याय XIV में समाहित हैं। उस

² (1963) 2 एससीआर 52.

अध्याय में स्थित धारा 154 संज्ञेय अपराधों में सूचना से संबंधित है और धारा 156 ऐसे अपराधों के अन्वेषण से संबंधित है और इन धाराओं के अंतर्गत पुलिस के पास किसी कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों का अन्वेषण करने का सांविधिक अधिकार है...और अन्वेषण करने की यह सांविधिक शक्ति पुलिस के अन्वेषण में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग या धारा 561ए के अंतर्गत न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।"

इस न्यायालय ने, यह पाने पर कि उच्च न्यायालय ने अन्वेषण में हस्तक्षेप करके अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया था, राज्य द्वारा दायर अपील को स्वीकार करके उच्च न्यायालय के आदेशों में हस्तक्षेप किया।

5. *बिहार राज्य एवं अन्य बनाम जे.ए.सी. सल्दाना एवं अन्य*³ में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने, देसाई, न्यायमूर्ति के माध्यम से, ख्वाजा नजीर अहमद सहित पूर्व निर्णयों का उल्लेख करते हुए, अभिनिर्धारित किया:

"अपराध पहचान और अपराध दंड के क्षेत्र में गतिविधि का एक स्पष्ट और सुपरिभाषित क्षेत्र है। किसी अपराध का अन्वेषण पूर्णतः कार्यपालिका के लिए आरक्षित क्षेत्र है, पुलिस विभाग के माध्यम से, जिसका अधीक्षण राज्य सरकार में निहित है। कार्यपालिका, जिस पर विधि एवं व्यवस्था की स्थिति पर निगरानी रखने का कर्तव्य अधिरोपित है, अपराध को रोकने के लिए बाध्य है और यदि किसी अपराध का कथित रूप से किया जाना कहा जाता है, तो अपराध का अन्वेषण करना और अपराधी को न्याय के कटघरे में लाना उसका अनन्य कर्तव्य है। एक बार जब वह पुलिस विभाग के माध्यम से अन्वेषण करती है और कोई अपराध किया जाना पाती है, तो अपराध को सिद्ध करने के प्रयोजन के लिए

³ (1980) 2 एससीआर 16.

साक्ष्य एकत्र करना उसका कर्तव्य है। एक बार यह पूर्ण हो जाने और अन्वेषण अधिकारी संहिता की धारा 190 के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने के लिए न्यायालय से अनुरोध करते हुए न्यायालय को प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है। न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लेने पर, अपराध के अन्वेषण का पुलिस कार्य धारा 173(8) में निहित प्रावधान के अधीन समाप्त हो जाता है, वहां न्यायपालिका का निर्णायक कार्य यह निर्धारित करने के लिए प्रारंभ होता है कि कोई अपराध किया गया है या नहीं और यदि हां, तो न्यायालय को अपनी रिपोर्ट में, और न्यायालय की संतुष्टि के लिए सिद्ध अपराध के लिए विधि के अनुसार पर्याप्त दंड अधिरोपित करने के लिए। इस प्रकार अपराध पहचान और उसके बाद पुलिस और दंडाधिकारी के बीच निर्णय के क्षेत्र में एक सुपरिभाषित और सुस्पष्ट कार्य है। इसे *किंग एम्परर बनाम ख्वाजा नजीर अहमद* [1944] एल.आर 71 आई ए 203 में बहुत पहले मान्यता दी गई थी।

... ..

...

... ..

न्यायिक समिति का यह दृष्टिकोण अपराध पहचान और उसके बाद के विचारण के क्षेत्र में कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों को स्पष्ट रूप से सीमांकित करता है और यह प्रतीत होगा कि किसी संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की पुलिस की शक्ति सामान्यतः न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप की जाने योग्य नहीं है।"

6. *एम.सी. मेहता (ताज कॉरिडोर घोटाला) बनाम भारत संघ एवं अन्य*⁴ एक जनहित याचिका थी जिसमें इस न्यायालय ने, पूर्व निर्णयों पर ध्यान देने के पश्चात, अभिनिर्धारित किया कि जब कोई संज्ञेय अपराध पुलिस को सूचित किया जाता है, तो वे अन्वेषण के पश्चात संहिता की धारा 169 या धारा 170 के अंतर्गत कार्रवाई कर सकते हैं। यदि पुलिस थाने का भारसाधक

⁴ (2007) 1 एससीसी 110.

अधिकारी यह मत बनाता है कि अभियुक्त के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य नहीं है, तो भारसाधक अधिकारी संहिता की धारा 169 के अंतर्गत अभियुक्त को अभिरक्षा से मुक्त कर सकता है या, यदि अधिकारी यह मत बनाता है कि पर्याप्त साक्ष्य है, तो वह संहिता की धारा 170 के अंतर्गत अभियुक्त को सक्षम दंडाधिकारी के सामने प्रस्तुत कर सकता है। पूर्व के निर्णयों का विश्लेषण करने के पश्चात, इस न्यायालय ने देखा:

"...कि अपराध पहचान और अपराध दंड के क्षेत्र में गतिविधियों का एक स्पष्ट और सुपरिभाषित क्षेत्र है। किसी अपराध का अन्वेषण कार्यपालिका के लिए आरक्षित क्षेत्र है, पुलिस विभाग के माध्यम से, जिसका अधीक्षण राज्य सरकार में निहित है। कार्यपालिका पर विधि एवं व्यवस्था की स्थिति पर निगरानी रखने का कर्तव्य अधिरोपित है। यह अपराध रोकने के लिए बाध्य है। यदि कोई अपराध कथित रूप से किया जाता है, तो अपराध का अन्वेषण करना और अपराधी को न्याय के कटघरे में लाना राज्य का कर्तव्य है। एक बार जब वह पुलिस विभाग के माध्यम से अन्वेषण करती है और कोई अपराध किया जाना पाती है, तो अपराध को सिद्ध करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य एकत्र करना उसका कर्तव्य है। एक बार यह पूर्ण हो जाने पर, अन्वेषण अधिकारी संहिता की धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने के लिए न्यायालय से अनुरोध करते हुए न्यायालय को प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है।"

7. अब, हम यह विचार करने के लिए मामले के तथ्यों पर वापस आएं कि क्या उच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों पर सुस्थापित विधिक स्थिति को उचित रूप से लागू किया।

18 सितंबर, 2006 को मेसर्स आई.वी.आर प्राइम अर्बन डेवलपर्स लि. (संक्षेप में

'आई.वी.आर') ने यहां उत्तरदाता के साथ एक समझौता ज्ञापन में प्रवेश किया जिसमें उत्तरदाता ने इस बात पर सहमति व्यक्त की कि वह आई.वी.आर के पक्ष में तमिलनाडु के कांचीपुरम जिले के संदावेल्लोर गांव में स्थित लगभग 600 एकड़ भूमि की बिक्री 28 लाख रुपये प्रति एकड़ के मूल्यवान प्रतिफल के लिए सुगम बनाएगा। पक्षकारों के बीच यह पारस्परिक रूप से सहमति हुई कि आई.वी.आर, के अंतर्गत उत्तरदाता के दायित्व के समय पर निपटान की सुरक्षा हेतु 2 लाख रुपये प्रति एकड़ की राशि धारित करेगी। उक्त भूमि की बिक्री का पूर्ण होना दो चरणों में किया जाना था। 450 एकड़ की सीमा वाला प्रथम चरण 31 नवंबर, 2006 से पहले पूर्ण किया जाना आवश्यक था और शेष 150 एकड़ का द्वितीय चरण 28 फरवरी, 2007 को या उससे पहले। उत्तरदाता ने आई.वी.आर के पक्ष में न्यूनतम 75 एकड़ प्रति सप्ताह के विक्रय विलेखों के पंजीकरण की व्यवस्था करने और उसे सुगम बनाने पर सहमति व्यक्त की। उत्तरदाता ने विक्रय विलेखों के पंजीकरण के लिए आई.वी.आर द्वारा आवश्यक उक्त भूमियों से संबंधित सभी प्रासंगिक दस्तावेज और अभिलेख एकत्र करने और प्रदान करने का दायित्व भी लिया था। आगे यह सहमति हुई कि उत्तरदाता द्वारा समझौता ज्ञापन की शर्तों का अनुपालन न होने पर आई.वी.आर द्वारा संचित प्रतिधारण राशि जब्त की जाएगी। समझौता ज्ञापन में आगे उपबंधित था कि यदि आई.वी.आर आश्वस्त हो कि उत्तरदाता समझौता ज्ञापन के अंतर्गत अपने दायित्व के भाग का निपटान करने में असमर्थ है तो उसे आई.वी.आर द्वारा रद्द किया जाएगा।

8. यह अनुभव करने पर कि उत्तरदाता भूमि के विशाल खंड में से केवल 64 एकड़ भूमि का हस्तांतरण आई.वी.आर के पक्ष में सुगम बना सका, आई.वी.आर ने 15 नवंबर, 2006 को उत्तरदाता को विधिक सूचना जारी की, जिसमें उसे सहमत समयसीमा के भीतर 450 एकड़ भूमि की बिक्री सुगम बनाने और पूर्ण करने के लिए कहा गया। चूंकि विधिक सूचना का कोई उत्तर नहीं आया, आई.वी.आर ने 30 नवंबर, 2006 को समझौता ज्ञापन समाप्त कर दिया और

समझौता ज़ापन की शर्तों के अनुसार प्रतिधारण राशि भी जब्त कर ली।

9. तत्पश्चात, आई.वी.आर ने भूमि के मालिकों और मेसर्स अल्टिरवेन स्टील्स लिमिटेड के साथ क्रमशः 330 एकड़ और 200 एकड़ भूमि की खरीद के लिए दो समझौता ज़ापन किए। यह वही भूमि है जिसकी बिक्री आई.वी.आर के पक्ष में सुगम बनाने का प्रथम उत्तरदाता ने दायित्व लिया था। यह बताया गया है कि उक्त आशय-पत्रों के अनुसरण में, आई.वी.आर ने कुल रु. 121.35 करोड़ की विक्रय प्रतिफल का भुगतान करके 346 एकड़ भूमि की खरीद पूर्ण कर ली है।

10. 12 जनवरी, 2007 को यहां उत्तरदाता ने तमिलनाडु की केंद्रीय अपराध शाखा के उप निरीक्षक पुलिस के समक्ष अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अंतर्गत अपराधों के किए जाने का आरोप लगाते हुए प्रथम सूचना दर्ज कराई और उसे 26 फरवरी, 2007 को प्रथम सूचना प्रतिवेदन सं. 93/2007 में पंजीकृत किया गया। इन अपीलों के निपटारे के प्रयोजन से उक्त प्रथम सूचना प्रतिवेदन(प्राथमिकी) में लगाए गए आरोपों के विवरण पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है क्योंकि हम कोई टिप्पणी या अवलोकन नहीं करने का प्रस्ताव रखते हैं जो आगे की लंबित कार्यवाहियों में बाधा डाल सकती हो। पुलिस ने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध मामला पंजीकृत करके अपना अन्वेषण प्रारंभ कर दिया था। यहां तक कि जब अन्वेषण प्रगति पर था, कुछ अस्पष्टीकृत कारणों से, उत्तरदाता ने संहिता की धारा 482 के अंतर्गत, आपराधिक मूल याचिका सं. 6194/2007 में उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जिसमें पुलिस को यह दावा करते हुए अपीलकर्ताओं से रु. 2,28,00,000/- की राशि जब्त करने का निर्देश देने की मांग की गई कि वह समझौता ज़ापन के अंतर्गत 64 एकड़ भूमि के पंजीकरण को सुगम बनाने के लिए रु. 1,28,00,000/- की राशि का हकदार था जो राशि कथित रूप से अपीलकर्ताओं द्वारा उस रु. 1 करोड़ की राशि के साथ रोकी गई है जो कथित रूप से उसके द्वारा अपीलकर्ताओं को भुगतान की गई है। उच्च न्यायालय में दाखिल याचिका रोचक

पाठन है जिसमें यह कहा गया कि उच्च न्यायालय के विचारार्थ निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं:

- ए. क्या अभियुक्तों ने गंभीर संज्ञेय अपराध नहीं किए हैं?
- बी. क्या समझौता ज्ञापन की समाप्ति विधिक और नैतिक रूप से सही है?
- सी. क्या याचिकाकर्ता को रु. 5 करोड़ की भारी मौद्रिक हानि नहीं हुई है, जो उक्त परियोजना में निवेश की गई थी?
- डी. क्या उत्तरदाता पुलिस का यह कर्तव्य नहीं है कि अभियुक्त सं. 1 से 3 से याचिकाकर्ता का रु. 1,28,00,000/- जब्त करे?
- ई. क्या उत्तरदाता पुलिस का यह कर्तव्य नहीं है कि अभियुक्त सं. 4 से 6 से याचिकाकर्ता का रु. 1,00,00,000/- जब्त करे?
- एफ. क्या अभियुक्त सं. 1 से 3 का यह दावा कि याचिकाकर्ता को रु. 2 करोड़ परिनिर्धारित क्षतिपूर्ति के रूप में अदा करना है, न्यायसंगत है?

11. यह ध्यान में रखा जाए कि अन्वेषण एजेंसी की ओर से किसी कर्तव्य की विमुखता का कोई आरोप नहीं है। उत्तरदाता द्वारा दर्ज कराई गई सूचना पर तत्काल पंजीकृत मामले के अन्वेषण के मामले में अन्वेषण एजेंसी की ओर से किसी मिलीभगत और जानबूझकर विलंब का भी कोई आरोप नहीं है। याचिका लगभग धन की वसूली के असैनिक वाद जैसी लगती है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिका अपराध के पंजीकरण के एक सप्ताह के भीतर दाखिल की गई जिस समय तक पुलिस ने पहले ही गंभीर अन्वेषण प्रारंभ कर दिया था जैसा कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से स्पष्ट है। यह भी ध्यान में लेना आवश्यक है कि अपीलकर्ताओं में से किसी को भी संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दाखिल याचिका में पक्ष उत्तरदाता के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया था। केंद्रीय अपराध शाखा, एगमोर, चेन्नई के उप निरीक्षक पुलिस द्वारा प्रतिनिधित्व राज्य को अकेले उत्तरदाता के रूप में पक्षकार बनाया गया था। अन्वेषण एजेंसी

ने उच्च न्यायालय में दाखिल अपने प्रति-आवेदन में बताया कि आवश्यक कानूनी राय प्राप्त करने के पश्चात, एक मामला पंजीकृत किया गया और 'अन्वेषण प्रारंभ किया'। यह भी श्रेणीबद्ध रूप से कहा गया कि पुलिस ने "सभी संबंधित साक्षियों से पूछताछ की, उनके कथन अभिलिखित किए और भौतिक दस्तावेज भी एकत्र किए और सभी अभियुक्तों द्वारा संज्ञेय अपराधों के किए जाने की पुष्टि की"। उच्च न्यायालय ने याचिका दाखिल होने की तारीख से एक माह की अवधि के भीतर, इसे अंतिम रूप से यह देखते हुए निपटा दिया कि "यह उत्तरदाता पुलिस का दायित्व है कि वह साक्षियों के कथन अभिलिखित करने, गिरफ्तारी, संपत्ति जब्त करने, विभिन्न दस्तावेजों के अवलोकन, आरोप-पत्र दाखिल करने सहित विधि के अनुसार अन्वेषण संचालित करे। यह भी कहना निरर्थक है कि यदि अभियुक्त व्यक्तियों के पास कोई खाता उपलब्ध हो, या कोई राशि उनके कब्जे में हो और राष्ट्रीयकृत बैंक में कोई खाता संधारित हो, तो इस मामले में व्यथित व्यक्तियों के हित की रक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठाना उत्तरदाता पुलिस का दायित्व है।" न्यायालय ने तदनुसार पुलिस को आदेश की प्रति की प्राप्ति की तारीख से छह माह के भीतर अन्वेषण शीघ्र पूर्ण करने का निर्देश दिया। उच्च न्यायालय का उक्त आदेश इन अपीलों में आक्षेपित है।

12. श्री उदय यू. ललित, अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश गंभीर और असाध्य त्रुटियों से ग्रस्त है जिनके लिए इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। उत्तरदाता ने संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दाखिल कार्यवाही में वस्तुतः अपीलकर्ताओं से राशि वसूल करने की मांग की जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है। आगे यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने अन्वेषण एजेंसी को किसी विशेष तरीके से कार्य करने का निर्देश जारी करके अपने क्षेत्राधिकार से बाहर गया जो असंधारणीय है।

13. उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता श्री के.वी. मोहन ने, दूसरी ओर, आदेश का समर्थन

किया और दलील दी कि उच्च न्यायालय ने न्याय के हित में मामले में उचित रूप से हस्तक्षेप किया।

14. हमारे विचारार्थ जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या उत्तरदाता द्वारा प्रस्तुत याचिका के अंतर्विष्ट से उस अन्वेषण अधिकारी को सांविधिक शक्ति और अपराध का अन्वेषण करने के कर्तव्य के प्रयोग के मामले में मार्गदर्शन देने वाले निर्देश जारी करने का कोई कारण प्रकट होता है जो पहले से पंजीकृत और जिसका वास्तव में अन्वेषण प्रगति पर था? क्या उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में ऐसा निर्देश जारी किया जा सकता था?

15. यह काफी सुस्थापित है और हमारी ओर से पुनः कथन की आवश्यकता नहीं है कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का संरक्षण एक स्वास्थ्यप्रद सार्वजनिक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए अभिकल्पित है जो यह है कि न्यायालयी कार्यवाही को उत्पीड़न या पीड़न के हथियार में अवनत होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग ही ऐसा था जिसके परिणामस्वरूप अंततः अपीलकर्ताओं का उत्पीड़न हुआ जैसा कि परवर्ती घटनाओं से स्पष्ट है। आक्षेपित आदेश के अनुसरण में, अन्वेषण प्राधिकरणों ने अपीलकर्ता सं.1 (विशेष अनुमति याचिका(आप.) सं. 3269/2007 में) के पास पहुंचकर उसे अभिरक्षा में लिया और उसे टेलीविजन चैनल पर प्रदर्शित किया। पुलिस ने रु. 2,28,00,000/- की राशि का भुगतान करने की मांग की और धमकी दी कि यदि वह उनकी मांग का अनुपालन करने में विफल रहा तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाएगा। तदनुसार, अपीलकर्ताओं ने पुलिस थाने में ही रु. 10 लाख नकद भुगतान किया और तमिलनाडु मर्केटाइल बैंक पर लिखित रु. 2.18 करोड़ की राशि का चेक जारी किया। हालांकि, इस न्यायालय के 4 मई, 2007 के अंतरिम आदेश के मद्देनजर बैंक को भुगतान रोकने

के निर्देशों के कारण चेक नकद नहीं कराया जा सका। पुलिस ने यह स्पष्टीकरण दिया कि मामला पक्षकारों के बीच स्वैच्छिक रूप से निपट गया और इसलिए, अभियुक्तों को गिरफ्तार नहीं किया गया और अभिरक्षा में नहीं भेजा गया। इस विचार को स्वीकार करना कठिन है कि पुलिस थाने में पक्षकारों के बीच कोई समझौता हुआ था। यह समझना कठिन नहीं है कि किस प्रकार और किन परिस्थितियों में अपीलकर्ता राशि का भुगतान करने और चेक जारी करने पर सहमत हुए होंगे। यह ज्ञात नहीं है कि किस प्रकार और किस प्राधिकार के अंतर्गत पुलिस पक्षकारों के बीच किसी विवाद में हस्तक्षेप कर उसे निपटा सकती थी। यह कहना निरर्थक है कि पुलिस के पास विवादों को निपटाने का ऐसा कोई प्राधिकार या कर्तव्य नहीं है।

16. यह पुलिस का सांविधिक दायित्व और कर्तव्य है कि वह अपराध का अन्वेषण करे और न्यायालयों को सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और अन्वेषण एजेंसी को यह मार्गदर्शन नहीं देना चाहिए कि अन्वेषण किस तरीके से आगे बढ़ना है। *एम.सी. अब्राहम एवं एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य*⁵ में इस न्यायालय ने देखा:

"दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 दंडाधिकारी के आदेश के बिना और वारंट के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तारी का उपबंध करती है। धारा पुलिस अधिकारी को विवेकाधिकार देती है जो दंडाधिकारी के आदेश के बिना और यहां तक कि वारंट के बिना, उस धारा में गणना की गई परिस्थितियों में किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है। अन्वेषण के दौरान, वह किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र है जो किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित रहा हो या जिसके विरुद्ध उचित शिकायत की गई हो या विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई हो, या इस प्रकार संबंधित होने का उचित संदेह हो। जाहिर है, उससे यांत्रिक तरीके से कार्य करने और सभी मामलों में रिपोर्ट दर्ज होते ही अभियुक्त को गिरफ्तार करने की अपेक्षा नहीं की जाती। उचित मामलों में, कुछ अन्वेषण के

⁵ (2003) 2 एससीसी 649.

पश्चात, अन्वेषण अधिकारी यह तय कर सकता है कि अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार करना आवश्यक है या नहीं। उस चरण पर न्यायालय की कोई भूमिका नहीं है। चूंकि शक्ति विवेकाधीन है, इसलिए पुलिस अधिकारी हमेशा अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए बाध्य नहीं है, भले ही उसके विरुद्ध आरोप कोई संज्ञेय अपराध करने का हो। चूंकि गिरफ्तारी विषयी की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण की प्रकृति की है और नागरिक की प्रतिष्ठा और स्थिति को प्रभावित करती है, इसलिए शक्ति का सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए। यह साथ-साथ अन्य बातों के साथ-साथ लगाए गए अपराध की प्रकृति और उन व्यक्तियों के प्रकार पर निर्भर करता है जिन पर संज्ञेय अपराध करने का आरोप लगाया गया है। जाहिर है, शक्ति का सावधानी और विवेक के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए।"

17. आगे देखा गया:

"सिद्धांत, इसलिए, सुस्थापित है कि अन्वेषण एजेंसी का यह काम है कि वह पूर्ण और संपूर्ण अन्वेषण के पश्चात दंडाधिकारी को प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। अन्वेषण एजेंसी आरोपों को प्रमाणित पाते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकती है। अन्वेषण एजेंसी के लिए यह भी उचित है कि वह प्रथम सूचना प्रतिवेदन(प्राथमिकी) में लगाए गए आरोपों के समर्थन में कोई सामग्री न होने का निष्कर्ष देते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। संबंधित दंडाधिकारी के लिए यह उचित है कि वह प्रतिवेदन स्वीकार करे या आगे जांच का आदेश दे। किंतु जो स्पष्ट है वह यह है कि दंडाधिकारी अन्वेषण एजेंसी को अपने विचारों के अनुरूप प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश नहीं दे सकता। यहां तक कि उस मामले में जहां अन्वेषण एजेंसी यह निष्कर्ष देते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है कि अभियोजन के लिए कोई मामला नहीं बनता, दंडाधिकारी के लिए प्रतिवेदन से असहमत होकर संज्ञान लेना उचित है, किंतु जो वह नहीं कर सकता वह यह है कि अन्वेषण एजेंसी को यह प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का

निर्देश दे कि अन्वेषण के दौरान एकत्र सामग्री द्वारा आरोपों का समर्थन किया गया है।"

18. इस न्यायालय ने यह देखते हुए कि उच्च न्यायालय के लिए यह निर्देश जारी करना उचित नहीं था कि मामले का न केवल अन्वेषण किया जाए बल्कि आरोप-पत्र भी प्रस्तुत किया जाए, अभिनिर्धारित किया:

"हमारे मत में उच्च न्यायालय ने यह निर्देश देने में अपने क्षेत्राधिकार से बाहर गया जो निरस्त किए जाने योग्य है। जहां उचित मामलों में, उच्च न्यायालय के लिए शीघ्र अन्वेषण आदि के लिए निर्देश देना उचित है, उच्च न्यायालय अन्वेषण एजेंसी को ऐसा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश नहीं दे सकता जो उसके विचारों के अनुरूप हो क्योंकि यह अन्वेषण एजेंसी द्वारा सांविधिक शक्ति के प्रयोग को बाधित करके मामले के अन्वेषण में अनुचित हस्तक्षेप के बराबर होगा।"

(जोर दिया गया है)

19. यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त मामले में निर्देश बंबई उच्च न्यायालय द्वारा जनहित में दाखिल रिट याचिका में जारी किए गए थे जिसमें यह शिकायत की गई थी कि यद्यपि भविष्य निधि आयुक्त ने अनेक निदेशकों के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराई थी, किंतु इस तथ्य के कारण कि निदेशक सरकारी सेवक थे और काफी प्रभाव का उपयोग कर रहे थे, अन्वेषण में कोई प्रगति नहीं हुई थी। उच्च न्यायालय ने श्रृंखलाबद्ध निर्देश जारी किए जिन्हें इस न्यायालय में यह तर्क देते हुए चुनौती दी गई कि उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में त्रुटि की जिसके परिणामस्वरूप मामले के अन्वेषण में अनुचित हस्तक्षेप हुआ। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्ति के प्रयोग में, अन्वेषण एजेंसी को अपने विचारों के अनुरूप मामले का अन्वेषण

करने का निर्देश नहीं दे सकता क्योंकि यह अनुचित हस्तक्षेप होगा, उसी प्रकार संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग में ऐसे कोई निर्देश जारी नहीं किए जा सकते।

20. उपर्युक्त सिद्धांतों की कसौटी पर परखने पर, आक्षेपित आदेश, हमारे सुविचारित मत में, न्यायिक हस्तक्षेप की सीमाओं को लांघने वाले आदेश के रूप में अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने एक से अधिक अवसरों पर यह देखा है कि जनहित याचिका कार्यवाहियों में भी उचित निर्देश जारी किए जा सकते हैं और ऐसे निर्देश जारी करने का उद्देश्य अनिवार्यतः अन्वेषण एजेंसी द्वारा सांविधिक कर्तव्य के निपटान को सुनिश्चित करना है। ऐसी कार्यवाहियों में न्यायालय का कर्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि एजेंसियां विधि के अनुपालन में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाहियों में हस्तक्षेप के लिए संरक्षित है यदि ऐसा हस्तक्षेप न्याय के सिरों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो या जहां न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों का जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत ऐसी शक्ति उच्च न्यायालय को किसी आपराधिक न्यायालय के समक्ष लंबित मामले के संबंध में सदैव उपलब्ध है।

21. उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान तक नहीं दिया। जैसा कि आदेश में ही कहा गया है, यह अधिकतर उस बार के पार किए गए तर्कों से अधिक निर्देशित था कि पुलिस ने इस मामले में अपीलकर्ताओं से व्यक्तियों को गिरफ्तार करने और संलिप्त राशि को जब्त करने के लिए कोई कदम नहीं उठाए, यद्यपि याचिका में ऐसी कोई तथ्यात्मक नींव नहीं रखी गई थी। इसने पुलिस द्वारा दाखिल

जवाबी हलफनामे को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया कि पुलिस अपराध के पंजीकरण के पश्चात थोड़े ही समय में दस साक्षियों की पहले ही परीक्षा कर चुकी थी और उनके कथन अभिलिखित कर चुकी थी। उच्च न्यायालय ने, बिना कोई कारण अभिलिखित किए, पुलिस को निर्देश दिया कि साक्षियों के कथन अभिलिखित करना, गिरफ्तारी करना, संपत्ति जब्त करना और आरोप-पत्र दाखिल करना उनका दायित्व था। यह समझना कठिन है कि उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में दूरगामी परिणामों वाले ऐसे निर्देश किस प्रकार जारी किए जा सकते थे। उच्च न्यायालय ने अपराध के अन्वेषण में हस्तक्षेप किया जो पुलिस के अनन्य क्षेत्र में है, लगभग पुलिस को किसी विशेष कोण से मामले का अन्वेषण करने और कुछ ऐसे कदम उठाने का निर्देश देकर जो पुलिस संग्रहीत साक्ष्य और अनेक अन्य परिस्थितियों के आधार पर अपने विवेक में हो सकता है उठाने का प्रयास करती या नहीं करती। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक अन्वेषण के परिणामस्वरूप गिरफ्तारी, संपत्ति की जब्ती और अंततः आरोप-पत्र का दाखिल होना हो। पुलिस, अपनी सांविधिक शक्ति और कर्तव्य के प्रयोग में, किसी मामले के अन्वेषण पर यह पा सकती है कि मामला बनता है जिसके लिए उसे आरोप-पत्र दाखिल करना है अथवा यह पा सकती है कि ऐसा कोई मामला नहीं बनता। यह पुनः कथन की आवश्यकता नहीं है कि संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त क्षेत्राधिकार को मितव्ययिता से, सावधानीपूर्वक और सतर्कता के साथ केवल वहीं प्रयोग किया जाना चाहिए जहां ऐसा प्रयोग प्रावधान में ही निर्धारित परीक्षण द्वारा न्यायोचित हो।

22. मामले का एक अन्य पहलू यह भी है कि अपीलकर्ताओं को उस आपराधिक याचिका में पक्ष उत्तरदाता के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया जिसमें उनके विरुद्ध सारे

आरोप लगाए गए हैं। पुलिस को गिरफ्तारी, संपत्ति जब्त करने और आरोप-पत्र दाखिल करने के उचित निर्देश जारी करने से पहले उच्च न्यायालय ने कभी यह उचित नहीं समझा कि अपीलकर्ताओं को सूचना दी जाए। इस न्यायालय ने *डिवाइन रिट्रीट सेंटर बनाम केरल राज्य एवं अन्य*⁶ में देखा:

"हम इस प्रश्न से संबंधित हैं कि क्या उच्च न्यायालय अपीलकर्ता और उसकी गतिविधियों के विरुद्ध अन्वेषण का निर्देश देने वाला न्यायिक आदेश उसे सुने जाने का अवसर दिए बिना पारित कर सकता था। प्रस्तुत मामला ऐसा मामला है जहां उच्च न्यायालय में दाखिल अज्ञात याचिका में किए गए आरोपों के आधार पर आपराधिक विधि को गतिमान करने का निर्देश दिया जाता है। किसी न्यायालय द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को सुने जाने का उचित अवसर दिए बिना जो ऐसे आदेश से प्रभावित होने की संभावना है, कभी भी कोई न्यायिक आदेश पारित नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से जब ऐसा आदेश किसी की अपनी प्रतिष्ठा को प्रभावित करने वाले कठोर परिणामों का कारण बनता है।"

(जोर दिया गया)

23. उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत मामले में, परिणामों का एहसास किए बिना, अपीलकर्ताओं को सुने बिना आकस्मिक और यांत्रिक तरीके से निर्देश जारी किए। आक्षेपित आदेश शून्य है और केवल उसी आधार पर निरस्त किए जाने योग्य है।

24. हम उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि उच्च न्यायालय ने कोई निर्देश नहीं जारी किया बल्कि पुलिस को उसके कर्तव्य की याद दिलाने वाली टिप्पणियों के साथ केवल याचिका का निपटारा किया। विचारार्थ जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या वे "टिप्पणियां" करने का कोई अवसर या आवश्यकता थी, भले ही उन्हें निर्देश नहीं

⁶ (2008) 3 एससीसी 542

बल्कि टिप्पणियां माना जाए। यह दूर-दूर तक भी नहीं सुझाया गया है कि पुलिस द्वारा कर्तव्यों के निर्वहन के मामले में कोई जानबूझकर निष्क्रियता या विफलता थी। विधि की प्रक्रियाओं के किसी विनाश का कोई आरोप नहीं था जो अभियुक्त को कर-मुक्त, सही सलामत जाने में सहायता करती और न ही उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित किया है। संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का उच्च न्यायालय द्वारा (i) न्याय के सिरों को सुरक्षित करने के लिए; (ii) उच्च न्यायालय संहिता के अंतर्गत किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक ऐसे आदेश पारित कर सकता है; (iii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए - स्वतः संज्ञान लेकर या आवेदन पर प्रयोग किया जा सकता है। कोई अन्य आधार नहीं है जिस पर उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सके। प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने क्यों और किन कारणों से मामले में उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता थी, इस बारे में कोई कारण अभिलिखित नहीं किया। उच्च न्यायालय से ऐसी आकस्मिक टिप्पणियां करने की अपेक्षा नहीं है जो ऐसी टिप्पणियों से उत्पन्न होने वाले संभावित परिणामों की कोई परवाह किए बिना की जाएं। उच्च न्यायालयों से आने वाली टिप्पणियों का घटनाओं की गति और विधि की प्रक्रिया को प्रभावित करने का अपना प्रभाव हो सकता है। उस कारण से, मामलों का निपटारा करते समय और वह भी प्रभावित होने की संभावना वाले व्यक्तियों को सुने बिना, कोई भी अनावश्यक टिप्पणियां नहीं की जानी चाहिए। प्रस्तुत मामला स्वयं इस बात का एक आदर्श उदाहरण है कि ऐसी टिप्पणियां कैसे कठोर और दूरगामी परिणामों का कारण बन सकती हैं। हम और अधिक नहीं कहना चाहते।

25. उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने इस तर्क के समर्थन में कि पुलिस संहिता के अंतर्गत अपनी शक्ति के प्रयोग में गिरफ्तार करने और संपत्ति जब्त करने की हकदार है, इस न्यायालय के *डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*⁷ के निर्णय पर निर्भरता रखी। हम प्रस्तुत

⁷ (1997), 1 एससीसी 416.

मामले का निर्णय करने के लिए उस निर्णय की प्रासंगिकता की सराहना करने में विफल हैं। हम *इंदर मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य*⁸ एवं अन्य और *केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम ए. रविशंकर प्रसाद एवं अन्य*⁹ के निर्णयों की प्रासंगिकता की सराहना करने में भी उत्तरे ही असमर्थ हैं। वे ऐसे मामले नहीं हैं जहां पुलिस को संहिता की धारा 482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा जिस तरीके से किए गए उस तरीके से कोई निर्देश जारी किए गए थे। हम पाते हैं कि जिन निर्णयों पर उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्भरता रखी गई उनमें से कोई भी उन प्रश्नों पर कोई प्रभाव नहीं रखता जो इन अपीलों में हमारे विचारार्थ उठे थे।

26. मामले से विदा लेने से पहले, हम, हालांकि, यह देख सकते हैं कि इस आदेश में की गई टिप्पणियां और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का लंबित कार्यवाहियों पर कोई प्रभाव नहीं होगा जो विधि के अनुसार आगे चलती रहेंगी।

27. उक्त कारणों से, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को बनाए रखना कठिन पाते हैं।

अनुमति प्रदान की गई। अपीलें तदनुसार स्वीकार की जाती हैं और आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है।

अपीलें स्वीकार की गई।

डी.जी.

⁸ (2001) 12 एससीसी 1.

⁹ (2009) 6 एससीसी 351.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।